आत्म - कथन

भाग - २

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का

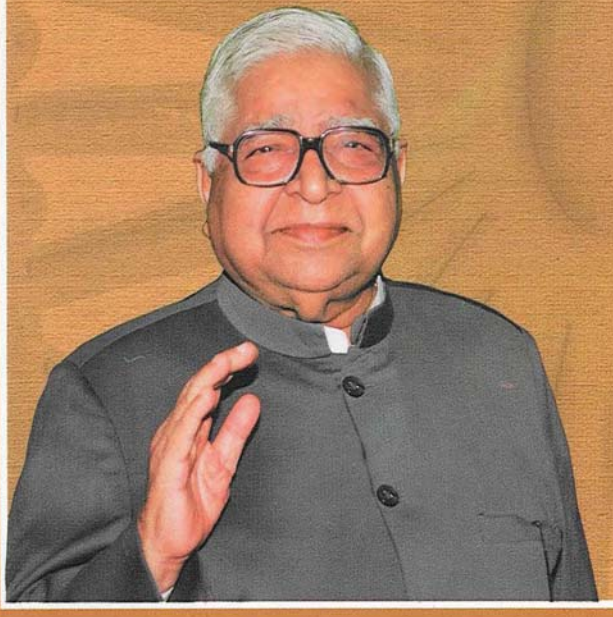

आत्म-कथन

भाग - २

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का

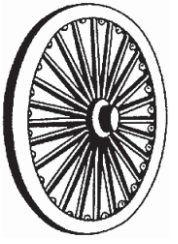

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

आत्म-कथन

भाग - २

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय .....[VII]

गुरुओं के प्रति निष्ठाभाव १

कल्याणदत्त दुबे ३

गोस्वामी तुलसीदास ८

रहिमन सुधा १०

सगुण साकार की भक्ति १७

रहीम और तुलसी २१

दुबेजी का देश-प्रेम ३०

कुछ घटनाएं ३७

मैट्रिक की पढ़ाई ३८

हिंदी का प्रचार-प्रसार ३९

कविता लेखन ४०

हिंदी लेखन ४१

कृष्ण के प्रति असीम श्रद्धा ४२

द्रवीभूत भक्ति ४९

महादेवजी नाथानी ५०

आर्य समाज से संपर्क ५१

भगवान बुद्ध के प्रति असीम श्रद्धा ५७

उपहासास्पद विडंबना ६०

मेरा भाग्योदय हुआ ६२

साधना विधि ६६
घर लौट कर चिंतन किया ६८
मेरा नया जन्म हुआ ७३
एक आकस्मिक संयोग ७३
प्रथम दर्शन - कालामसुत्त ७४
पहले दिन का तूफान और शांति ७५
पुनरवलोकन ८१
क्या अभ्यास किया? ८३
बुद्ध-वाणी का पठन ८५
स्वामी विवेकानंदजी का मेरे जीवन पर विपुल प्रभाव ८८
भगवान बुद्ध की महानता ९१
चार्वाक एवं बुद्ध ९४
आस्तिक-नास्तिक ९५
ब्रह्मचर्य का पालन ९६
मागन्धीय ९६
अपरिवर्तनीय ९८
निर्वाण क्या है? ९९
अमृत का द्वार खुल गया १०१
अमृत क्या है? १०१
'बौद्ध धर्म' से परहेज १०८
पहली मुठभेड़ १०९
दोहरी मानसिकता १११
बुद्ध की शिक्षा निषेधात्मक नहीं ११२
धर्म और विनय ११३
महास्थविर महाकश्यप ११४
अकिरियावादी ११५
वारित्त शील और चारित्त शील ११६
अनित्य, दुःख अनात्म ११८
भारत-यात्रा १२४

महर्षि १२५
स्वामी १२८
महात्मा १२९
कबीर, नानक आदि संत १३२
प्रीति-सुख १३६
अविद्या १३७
क्षणिकवाद १३९
भारत का कर्ज १४४
भारत में पहला शिविर १४५
अंग्रेजी भाषा में पहला शिविर १४८
शिविर-खर्च को लेकर उठीं शंकाएं १४८
पासपोर्ट और नागरिकता १४९
फ्रांस में पहला शिविर १५०
अमेरिका में पहला शिविर १५१
मेरे बारे में उठी अफवाह १५१
म्यंमा में राष्ट्रीय सम्मान १५२
'मिलेनियम वर्ल्ड पीस समिट' में प्रवचन १५४
श्रीलंका में राजकीय सम्मान एवं प्रवचन १५५
डाओस में प्रवचन १५६
भोपाल (म.प्र.) में प्रवचन व सम्मान १५६
धर्म का जयघोष १५७
विभिन्न अलंकरण १५८
विपश्यना विशोधन विन्यास की स्थापना १६०
ग्लोबल विपश्यना पगोडा का निर्माण १६१
म्यंमा एवं सयाजी के प्रति कृतज्ञता १६२
पगोडा की अन्य विशेषताएं १६२
पगोडा परिसर के अन्य आकर्षण १६६

धम्मपत्तन विपश्यना केंद्र १६८
परियत्ति भवन में पालि भाषा का अध्यापन १६९
परिशिष्ट - १.....१७०
पगोडा पर विभिन्न अवसरों पर हुए समारोह १७०
पगोडा का वास्तविक आकार और विशेषताएं १७१
संक्षेप में मुख्य पगोडा के कुछ तकनीकी तथ्य १७२
परिशिष्ट - २.....१७३
पगोडा परिसर में 'सद्धम्म सिरि महाबोधि' **.....१७३**

विपश्यना साहित्य.....१७६
विपश्यना साधना केंद्र.....१८०

प्रकाशकीय

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत विपश्यना आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी पर पूर्णतया लागू होती है। साधकों की उत्सुकता को ध्यान में रखते हुए तथा प्रकारांतर से उन्हें प्रेरणा प्रदान करने के लिए उन्होंने जो आत्मकथन (एक और दो) लिखा है वह उनकी आध्यात्मिक यात्रा का एक अमूल्य दस्तावेज है। ऐसा नहीं कि उन्हें बना-बनाया रास्ता मिल गया और वे उस पर चल पड़े। उनके लिए यह सुविधा (और दुविधा भी) रही, उनके चारों ओर अनेक रास्ते रहे और सब पर थोड़ा-बहुत चलते भी रहे पर अंततः उन्होंने विपश्यना का 'राजपथ' ही चुना।

बुआ की डांट पर वे एक आज्ञाकारी बालक बने, कासू गुरुजी, दुबेजी और अन्य अध्यापकों की प्रेरणा से वे एक मेधावी विद्यार्थी हुए, कविवर रहीम के दोहों से कविता (दोहा) लिखने की प्रेरणा मिली, आर्यसमाज के सत्संग से वे समाज सुधारक हुए और पारिवारिक परंपरा ने उन्हें सफल उद्योगपति तथा धर्म के क्षेत्र में एक विह्वल भक्त बनाया। हाईस्कूल की परीक्षा में पूरे म्यंमा में प्रथम आने और छात्रवृत्ति पाने पर भी पारिवारिक दबाव के कारण आगे की पढ़ाई नहीं कर सके, फिर भी उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की। दस-बारह वर्ष की अल्प अवधि में ही उन्होंने म्यंमा के अग्रगण्य उद्योगपतियों में स्थान बना लिया। साथ ही अनेक सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, औद्योगिक और व्यापारिक संस्थाओं के प्रमुख पदों पर आसीन हो गये। इसके साथ ही बर्मी सरकार के व्यापारिक, औद्योगिक और व्यावसायिक मामलों के परामर्शदाता भी बन गये। इतने कम समय में प्राप्त अप्रत्याशित सफलता ने श्री गोयन्काजी के ही शब्दों में उनके चित्त को अहंकार से भर दिया। उस अहंकार ने उन्हें बेचैन, व्यग्र, व्याकुल बना दिया जिसकी परिणति माइग्रेन के तेज दौर के रूप में हुई। इन विकारों से छुटकारा पाने के लिए कर्मकांडीय परंपरा में अपने उपास्यदेव के सम्मुख प्रार्थना, रुदन-क्रंदन आदि करने से थोड़ी देर

के लिए मन हल्का जरूर होता परंतु फिर वही अहंकार और उसके परिणामस्वरूप माइग्रेन-पीड़ा की छटपटाहट। डॉक्टरों की दवाएं बेअसर हो चुकी थीं।

भला हो बरमी मित्र ऊ छां ठुन का, जिनके आग्रह पर श्री गोयन्काजी सयाजी ऊ बा खिन से मिले, परंतु बुद्ध की शिक्षा के प्रति फैली विपरीत लोकधारणा के कारण वे काफी पशोपेश में रहे। क्योंकि बुद्ध को नौवां अवतार मानने पर भी भारतीयों के लिए बुद्ध की तथाकथित नास्तिक शिक्षा वर्जित थी। ऐसी दुविधा की स्थिति में जब वे ऊ बा खिन के पास पहुँचे तब उनके बैठते ही सयाजी ने कहा, सुना है तुम माइग्रेन के रोगी हो। उसके इलाज के लिए आना चाहते हो तो मत आना, किसी डॉक्टर के पास जाओ। फिर बड़े प्यार से समझाया कि यह बहुत ऊंचे अध्यात्म की साधना है। इसका अवमूल्यन नहीं करना है। 'विपश्यना' विद्या तुम्हारे भारत की ही देन है। इसमें शील, समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास किया जाता है। प्रज्ञा और स्थिप्रज्ञता की बातें श्री गोयन्काजी ने गीता में बहुत पढ़ी थीं और उस पर घंटों प्रवचन भी देते थे परंतु स्थितप्रज्ञता अपने जीवन में नहीं उतरी थी। ये इसे जीवन में उतारने का अभ्यास करवाते हैं, इस जिज्ञासा ने उनके मन में आकर्षण पैदा किया। इस मुलाकात के लगभग दो माह बाद शिविर लगने वाला था। शिविर में सम्मिलित होने की स्वीकृति लेकर घर वापस आ गये।

पर घर लौटने पर हां-ना (कोर्स में जायँ कि न जायँ) का चिंतन चलता रहा। निश्चित तिथि पर सम्मिलित होने के लिए चले गये परंतु प्रारंभ में कुछ ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा जिनके कारण चुपके से शिविर छोड़ने का मन बना लिया। हुआ यह था कि आचार्य ने अन्य साधकों से उस दिन के अनुभव पूछे थे। साधक भी आपस में बातचीत करते रहते थे। इस प्रकार अन्य साधकों के अनुभवों से श्री गोयन्काजी के अनुभव का मेल नहीं बैठा। अतः उन्होंने समझा कि उनकी साधना ठीक नहीं चल रही है। व्यापारी आदमी, बेकार समय क्यों खराब करूं? परंतु उसी शिविर में रंगून विश्वविद्यालय की प्रोफेसर डो म्या सैं नामक एक पुरानी साधिका भी सम्मिलित थी। उसने इनका रंग-ढंग देखा तो समझाया और उसके समझाने से रुक गये। देखा कि दूसरे दिन से उनकी

साधना बहुत अच्छी होने लगी। इसीलिए उन्होंने अपने शिविरों में साधकों को आपस में चर्चा करने पर रोक लगायी और पूरे शिविर मौन रहना अनिवार्य घोषित किया। शिविर आरंभ होने के दो दिन पूर्व उन्हें माइग्रेन का तीव्र दर्द उठा था परंतु शिविर पूरा होने पर वह जाता रहा। उनकी बेचैनी, व्यग्रता, व्याकुलता सब दूर हो गयी।

बुद्ध को पूजना परंतु उनकी शिक्षा से दूर रहने की भारतीय प्रवृत्ति श्री गोयन्काजी के मन में भी घर कर गयी थी। अपनी कविताओं में वे बुद्ध की प्रशंसा करते नहीं थकते परंतु भदंत आनन्द कौसल्यायनजी द्वारा उनकी शिक्षा की प्रशंसा करने पर भदंत आनन्दजी से उन्होंने बुद्ध संबंधी संवाद ही बंद कर दिया। उनकी दी हुई 'धम्मपद' की पुस्तक उनकी टेबल पर साल भर रखी रही परंतु उसे उठा कर नहीं देखा। उसे पढ़ा शिविर से लौटने के बाद। श्री गोयन्काजी ने बड़ी ही साफगोई के साथ बुद्ध के प्रति अपनी दोहरी मानसिकता का वर्णन किया है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि शिविरों में जब कोई बुद्ध की शिक्षा के प्रति संदेह व्यक्त करता है तब वे उससे रुष्ट नहीं होते बल्कि अपने विगत अनुभव के आधार पर उसे बड़े ही स्नेह और आत्मीय ढंग से समझाते हैं।

एक सितंबर १९५५ को लगभग ३१ वर्ष की अवस्था में वे पहली बार विपश्यना शिविर में सम्मिलित हुए, जिसे उन्होंने अपना 'नया जन्म' कहा। साधना विधि से प्रभावित होकर उन्होंने बुद्धवाणी का पठन आरंभ किया। शिविर पूरा करने के लगभग तीन माह बाद उन्होंने यह सोच कर भारत की यात्रा की कि 'जब म्यंमा के एक गृहस्थ संत ने ध्यान की ऐसी कल्याणकारिणी अनुभूतियां करवायीं तो इस महान पुरातन देश में तो और गहराई में जाने वाली साधनाएं प्रचलित होंगी।' इस संबंध में वे हरिद्वार के एक धर्मगुरु महर्षि महेश योगी, स्वामी कृष्णानंद आदि अनेक संतों से मिले लेकिन कुछ विशेष हाथ नहीं लगा। कुछ को तो यह जान कर आश्चर्य हुआ कि 'विपश्यना में सारा मृण्मय शरीर चिन्मय हो जाता है।' इससे अधिक और क्या चाहिए? एक संत ने तो यहां तक स्वीकार किया कि हमारे यहां कोई ध्यान-विधि नहीं सिखायी जाती। हम केवल सुविधा प्रदान करते हैं, जिसको जो मन में आये, वैसा ध्यान करे।

आत्मकथन भाग दो में श्री गोयन्काजी ने धर्म और विनय, क्रियावाद

और अक्रियावाद; वारित्त शील और चारित्त शील; अनित्य, दुःख, अनात्म और अशुभ तथा क्षणिकवाद आदि की सही-सही व्याख्या करते हुए इनके संबंध में फैले भ्रम को दूर किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि बुद्ध संसार के दुःखमय होने की बात नहीं करते, बल्कि संसार के लोगों को दुःख से मुक्त होने की बात करते हैं। 'अमृत का द्वार खुल गया' शीर्षक लेख के अंतर्गत उन्होंने निर्वाण के लिए अक्षर, शिव, अच्युत, ध्रुव, शाश्वत, अनुत्पाद, अजन्मा आदि दर्जन भर से ज्यादा पर्यायवाची शब्द दिये हैं, जो निर्वाण की पर्याप्त व्याख्या और इसकी समझ हृदय में बैठा देने में समर्थ हैं। 'विपश्यना' इसी अमृत पद को प्राप्त करने का उपाय है।

इस पुस्तक में प्रसंगवश कहीं-कहीं कुछ बातों को विस्तार से समझाने के कारण पुनरावृत्ति हुई है जिसके बारे में उन्होंने आत्मकथन भाग १ के ४१वें पृष्ठ पर स्वयं ही लिखा है--

"... जिसका **विस्तृत विवरण** मेरे **सभी गुरुजनों के उपकारों** का वर्णन करते हुए किसी **अन्य आत्मकथन** में कर पाऊंगा ...।"

विश्वास है पाठक इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

अपने गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन के निर्देश पर उन्होंने ३ जुलाई १९६९ को भारत की आर्थिक राजधानी कहे जाने वाले मुंबई महानगर की एक धर्मशाला में पहला शिविर लगाया। फिर तो धर्म का चक्का पूरे देश में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, और विदेशों के कोने-कोने में चारों ओर बढ़ता चला गया। अनेकानेक विपश्यना केंद्रों की स्थापना हुई। विपश्यना पर शोध करने के लिए श्री गोयन्काजी ने इगतपुरी में 'विपश्यना विशोधन विन्यास' की स्थापना की। इसके माध्यम से पालि साहित्य ही नहीं, अन्य भाषाओं के साहित्य भी कंप्युटर में निवेशित करवाये ताकि उन पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। बुद्धवाणी में विपश्यना आदि विषयों का न केवल विशोधन किया गया बल्कि पूरा का पूरा पालि साहित्य इसके माध्यम से छपा और विश्वभर के पालि विद्वानों को वितरित किया गया। अनेक लिपियों में लिप्यन्तरित करके पूरे पालि साहित्य की सीडी बनायी गयी और निःशुल्क वितरित की गयी। बाद में इसे विश्व की १४ लिपियों में

इंटरनेट पर डाल दिया गया है। अब कोई भी, कहीं से भी पालि साहित्य का अध्ययन और विशोधन आदि कर सकता है।

'मिलेनियम वर्ल्ड पीस समिट' में दिया गया उनका प्रवचन... ''मैं परिवर्तन के पक्ष में हूं, ... परंतु परिवर्तन एक संप्रदाय से दूसरे संप्रदाय में नहीं, बल्कि परिवर्तन दुःख से सुख में, बुराई से अच्छाई में, दुर्भावना से सद्भावना में होना चाहिए।'... यह सहस्राब्दियों तक दुःखी मानवता के लिए प्रकाशस्तंभ का कार्य करेगा।

श्री गोयन्काजी के मन में एक बहुउपयोगी पगोडा बनाने का संकल्प उभरा। म्यंमा में एक लोकोक्ति है -- 'बुद्ध की शिक्षा विश्व में तब तक सुरक्षित रहेगी जब तक कि बुद्ध की शरीर धातु सुरक्षित रहेगी।' यानी, इसे दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने के लिए किसी ऐसे वास्तु का निर्माण हो जो सहस्राब्दियों तक कायम रहे और इससे अधिक से अधिक लोगों का मंगल हो। इस कड़ी में संरचनाकारों से विचार-विमर्श के बाद यह चित्र उभरा कि एक ऐसा पगोडा बने जो केवल पत्थरों से निर्मित हो तो ही चिरकाल तक जीवित रहेगा। क्योंकि सीमेंट और लोहे से बनी इमारतें १००-२०० वर्ष ही कायम रह सकती हैं। इस प्रकार मुंबई के पास गोराई में केवल पत्थरों के प्रयोग से एक विशाल पगोडा बना जिसमें बुद्ध धातु सुरक्षित कर दी गयी, जो कम से कम दो हजार वर्षों तक कायम रहेगी। इसके विशाल गुंबदनुमा स्तंभ-विहीन साधना कक्ष में आठ हजार से अधिक लोग बैठ कर ध्यान कर सकते हैं।

विपश्यना विद्या म्यंमा में हजारों वर्षों तक कायम रही और वहां से भारत वापस आयी, इसलिए म्यंमा के उपकार को याद करके कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु यह पगोडा वहां के प्रसिद्ध पगोडा **'श्वे-डगोन'** की प्रतिकृति का बनाया गया ताकि **म्यंमा** के साथ-साथ **सयाजी ऊ बा खिन** को भी याद किया जाता रहे।

श्री गोयन्काजी के निर्देशन से पगोडा देखने आने वालों को विपश्यना की जानकारी देने के लिए और इसके अभ्यास के लिए पगोडा के बगल में एक विपश्यना केंद्र की स्थापना हुई, जिसमें लगभग १०० लोगों के दस-दिवसीय तथा दीर्घ शिविर भी लगते हैं। पगोडा परिसर में अन्य अनेक जानकारियों के लिए और भी कई उपक्रम किये गये हैं। 'विपश्यना

विशोधन विन्यास' के 'पालि प्रशिक्षण विभाग' तथा 'विशोधन विभाग' की इकाइयों को पगोडा परिसर में स्थानांतरित कर दिया गया ताकि शहर के समीप होने के कारण अधिक से अधिक लोग इसका लाभ उठा सकें। 'प्रकाशन विभाग' तथा 'अमूल्य विधि-निधि सुरक्षा विभाग' (Archive Centre) इगतपुरी में ही है।

इस महामानव के प्रति अनेक लोगों और संस्थाओं ने अलंकरण और सम्मान प्रदान कर अपना सद्‌भाव व्यक्त किया। वे सुखी हों। उन्हें शांति प्राप्त हो।

सबका मंगल हो! सबका कल्याण हो!

विपश्यना विशोधन विन्यास।